

आलोचना पाठ (श्री जौहरीलालजी कृत)

(दोहा)

बंदौं पाँचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज ।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज ॥१॥

(सखी छन्द)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी ।
तिनकी अब निर्वृत्ति काज, तुम सरण लही जिनराज ॥२॥
इक बे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित सहित जे जीवा ।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी ॥३॥
समरंभ समारंभ आरंभ, मन-वच-तन कीने प्रारंभ ।
कृत-कारित-मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ॥४॥
शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतैं ।
तिनकी कहूँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥
विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के ।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने ॥६॥
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी ।
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो ॥७॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर-वनितासों दृग जोरी ।
आरंभ परिग्रह भीने, पन पाप जु या विधि कीने ॥८॥
सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय-सेवन को ।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने ॥९॥
फल पंच उदुंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाहे ।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, सेये विषयन दुखकारे ॥१०॥
दुइवीस अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये ।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो ॥११॥

अनंतानु जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये ॥१२॥
परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि त्रिवेद संयोग ।
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥
निद्रावश शयन कराया, सुपने मधि दोष लगाया ।
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विष-फल खायो ॥१४॥
किये आहार बिहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा ।
बिन देखी धरा उठायी, बिन शोधी वस्तु जु खायी ॥१५॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकल्प उपजायो ।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गई है ॥१६॥
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी ।
भिन भिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पड़ये ॥१७॥
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी ।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी ॥१८॥
पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई ।
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो ॥१९॥
हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी ।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा ॥२०॥
हा हा! परमाद बसाई, विन देखे अगनि जलाई ।
ता मधि जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥
बींध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो ।
झाड़ू ले जागा बुहारी, चिंवटी आदिक जीव बिदारी ॥२२॥
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी ।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥
जल-मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल्ल बहु घात करायो ।
नदियन विच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥२४॥

अन्नादिक शोध कराई, तामधि जु जीव निसराई।
 तिनको नहिं जतन करायो, गलियारैं धूप डरायो॥२५॥
 पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभ हिंसा साजे।
 किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी॥२६॥
 इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
 संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई॥२७॥
 ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
 फल भुंजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसें कहि जावे॥२८॥
 तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी।
 हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है॥२९॥
 जो गाँवपती इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
 तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी॥३०॥
 द्रौपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
 अंजन-से किये अकामी, दुख मेटहु अंतरजामी॥३१॥
 मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
 सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी॥३२॥
 इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
 रागादिक दोष हरीजै, परमात्म निज-पद दीजै॥३३॥

(दोहा)

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीजे मोय।
 सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद मंगल होय॥३४॥
 अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरि' आप जिनन्द।
 ये ही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनन्द॥३५॥

निज स्वरूप को परम रस, जामैं भरो अपार।
 बन्दूँ परमानन्दमय, समयसार अविकार॥